बोध के विविध रंग

कुसुमलता मालिक

प्राक्कथन

अपने जीवन के लंबे रंगानुभव को 'बोध के विविध रंग' के रूप में पाठकों के हाथों में सौंपते हुए मुझे अत्यंत हर्ष का अनुभव हो रहा है। नाटक अपने समय और समाज का होता है। समय की तीव्र गति समाज के ठहराव में हलचल पैदा करती है। इस हलचल से जो संबंध बनते-बिगड़ते हैं, नाटक में ही नहीं वरन् साहित्य की प्रत्येक विधा में उन्हीं की छवि प्रतिभासित होती है। आभास और प्रत्याभास से संयुक्त अहसास को मैंने प्रस्तुत पुस्तक में रखने की कोशिश की है। इस कोशिश में मैं कितनी सफल अथवा असफल होती हूँ, इसका भान तो पाठकों की प्रतिक्रिया के पश्चात् ही हो सकेगा। जिस तरह नाटक में साहित्य की समस्त विधाएँ अपना रूपाकार खोकर नाटक से एकात्म अर्थात् एकाकार हो जाती हैं, ठीक वैसे ही पाठकों को कृति सौंपकर कृतिकार भी स्वयं को खो देता है। खोने के इस आनंद का अनुभव समय-समय पर आगत पाठकों की प्रतिक्रियाओं से होता है।

ईश्वर की यह असीम कृपा है कि पाठकों को मेरी पिछली चारों पुस्तकें अत्यंत पसंद आईं। 'नई रंग चेतना एवं बकरी' तथा 'स्वातंत्र्योत्तर पारंपरिक रंग प्रयोग' दोनों पुस्तकें अपने दूसरे संस्करण के रूप में पाठकों तक शीघ्र पहुँचने के

लिए तैयार हैं। मैं अपने पाठकों का हृदय से धन्यवाद करती हूँ, जिन्होंने अतियथार्थ के इस पूँजीवादी युग में भी सोशल मीडिया के तमाम दबावों के बावजूद अपना पुस्तक प्रेम कायम रखा। 'बोध के विविध रंग' को नए विश्वास और उजली आशा के साथ पुनः पाठकों के कर कमलों में सौंपती हूँ।

धन्यवाद।

कुसुमलता मलिक

युग बोध के नाटककार भारतेंदुः 'भारत दुर्दशा' के संदर्भ में

भारतेंदु नाटक की परिभाषा करते हुए नाटक शब्द का अर्थ रंग खेल अथवा लीला कौतुक मानते हैं। उनके कथन के भावानुसार नाटक शब्द का अर्थ होता है- नट लोगों की क्रिया अर्थात् अभिनेताओं द्वारा कृत अभिनय। यह क्रिया अथवा अभिनय जीवन से दूर या बाहर का नहीं हो सकता। अभिप्राय यह हुआ कि भारतेंदु नाटक को जीवन के भीतर से उपजने वाला और उसी के रस से बढ़ने वाला कर्म मानते हैं। लीला जीवन की हो अथवा खेल की, कौतुक के बिना नीरस हो जाती है। इस नीरसता को न तो जीवन बर्दाश्त करता है और न ही खेल। फिर भला किसी भी कला में कौतुक अथवा जिज्ञासा अथवा रंजकता अथवा रसोत्पादकता न हो, ऐसा संभव नहीं। कला परिष्कार तथा सुरुचि का परिणाम होती है। भारतेंदु के नाटक उनकी परिष्कृत कला दृष्टि के द्योतक हैं।

साहित्य की अन्य विधाएं मात्र ऐतिहासिक हो सकती हैं, महज मनोवैज्ञानिक हो सकती हैं, सिर्फ दार्शनिक या रहस्यात्मक भी हो सकती हैं किंतु, नाटक उस तरह से एकांगी नहीं हो सकता। भारतेंदु यह भली प्रकार समझते थे कि नाटक बहुआयामीय रचनाधर्मिता से परिपूर्ण विधा है। उसमें जीवन का

मात्र कोई एक रंग ही नहीं दिखाया जा सकता, किसी एक रंग को दिखाने के लिए भी जीवन के अनेक रंगों से बने इंद्रधनुष में से होकर गुजरना उसकी अनिवार्यता है। भारतेंदु ने इस अनिवार्यता को आत्मसात् किया था इसीलिए वे युग पुरस्कर्ता रचनाकार हैं।

भारतेंदु के साहित्यिक योगदान के मद्देनजर रंगकर्म में उनका सक्रिय योगदान इस क्षेत्र में उनकी बहुआयामीय सक्रियता से स्पष्ट हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिंदी रंग आंदोलन की उनके द्वारा निर्मित एवम् संगठित योजनाओं को देख समझकर पता चलता है कि वे रंगकर्म की परिव्याप्ति के साथ ही साथ परिवर्तन करने की क्षमता को भी भली-भांति पहचानते थे। भारतेंदु न सिर्फ हिंदी में मौलिक नाटकों की रचना बहुलता चाहते थे वरन् उनका यह भी प्रयास था कि विश्व की समस्त समृद्ध भाषाओं के उत्कृष्ट नाटकों तथा समीक्षात्मक रंग मानदंडों का अनुवाद हिंदी में सहजता से उपलब्ध हो। भारतेंदु जानते थे कि नाटक जैसी विधा में ही सीधे टकराने तथा खतरे उठाने की क्षमता निहित है। यही कारण है कि वे हिंदी की रंग समीक्षा को रूढ़िबद्धता से मुक्त रखते हुए स्वस्थ जीवंतता के साथ प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इस दृष्टि से उन्होंने शास्त्रीय अर्थात् संस्कृत रंग समीक्षा का पुनरावलोकन किया और उसके